LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 10: विभूतियोग

2/3 (श्लोक 11-27), रविवार, 30 जून 2024

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/ao6EBcZFfrg

भगवत् ऐश्वर्य का वर्णन

ईश्वर की असीम अनुकम्पा से एवम् गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ सङ्कीर्तन भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना एवम् दीप प्रज्वलन से हुआ। दसवें अध्याय में श्रीभगवान आगे आने वाले श्लोकों में अपनी विभूतियों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं। वे अर्जुन को अपने प्रिय सखा सहित अपने परम भक्त के रूप में विचार करते हुए, अर्जुन की व्याकुलता, जो श्रीभगवान की विभूतियों को जानने के विषय में हैं, को शान्त करने के उद्देश्य से जिन जीवों में या जिन स्थानों में एवम् जिन पदार्थों में परम् तत्त्व (भगवत् तत्त्व) दैदीप्यमान है, उन्हें अपनी विभूतियों के रूप में वर्णित करते हैं। इस परम् दिव्य भगवत् तत्त्व का विस्तार से वर्णन श्री भगवान ने श्री गीता जी के तेरहवें अध्याय में किया है।

"

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्

तेरहवें अध्याय के अठारहवें, तेईसवें और चौंतीसवें श्लोक में श्रीभगवान ने क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का, प्रकृति पुरुष का जो ज्ञान (विवेक) बताया था, उसी ज्ञानको फिर बताने के लिये श्रीभगवान् '**भूयः प्रवक्ष्यामि**' पदों से प्रतिज्ञा करते हैं। नवें अध्याय में श्रीभगवान ने यह ज्ञान अर्जुन को दिया था। पुनः पुनः एक ही बात कहने पर उस बात का मन में ठहराव आ जाता है, वह और अच्छी तरह समझ में आती है, इसलिए श्रीभगवान उस परमात्म-तत्त्व का ज्ञान तेरहवें अध्याय में पुनः दोहराते हैं, जिस ज्ञान को जानकर अर्थात् जिसका अनुभव करके बड़े-बड़े मुनिगण इस संसार से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो गये हैं। भगवान इस संसार में सबके आदि हैं, इस संसार में जो कुछ भी है वह उन्हीं से निर्मित है। वे अजन्मे हैं और मनुष्य रूप में अवतरित होते रहते हैं।

श्रीभगवान द्वारा दिया गया गीता का ज्ञान अमूल्य है। महाभारत युद्ध में स्वयम् परमात्मा सगुण, साकार रूप में उपस्थित हो अर्जुन के रथ में लगे अश्वों की लगाम थामे हुए, अर्जुन जैसे अपने परम प्रिय भक्त को जो ज्ञान दे रहें हैं, वह वर्तमान समय में भी प्रासङ्गिक है। श्रीभगवान द्वारा दिया गया यह ज्ञान जो श्रीमद्भगवद्गीता जी के रूप में विद्यमान है, उसे पढ़ने, पढ़ाने एवम् जीवन में लाने से अर्थात् श्रीगीता जी में श्रीभगवान द्वारा वर्णित सभी श्लोकों को अपने जीवन में, अपने व्यवहार में लाने के प्रयास मात्र से, जीवों के भीतर, उनके अन्तःकरण में स्वतः ही पारलौकिक परमात्मा का उनके ईश तत्त्व रूप में वास हो जाता है एवम् उनके शुद्ध भक्तों का एकीकरण सच्चिदानन्द परमात्मा से हो जाता है।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
10:10

जो भक्त निरन्तर रुप से प्रेम पूर्वक श्रीभगवान का स्मरण करते हैं, श्रीभगवान स्वयं ही उन्हें वह अनुपम ज्ञान प्रदान करते हैं।

10.11

तेषामेवानुकम्पार्थम्,अहमज्ञानजं(न्) तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो, ज्ञानदीपेन भास्वता॥10.11॥

उन भक्तों पर कृपा करने के लिये ही उनके स्वरूप (होने पन) में रहने वाला मैं (उनके) अज्ञानजन्य अन्धकार को देदीप्यमान ज्ञानरूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

विवेचन:- यह अत्यन्त ही सुन्दर श्लोक है। श्रीभगवान कहते है कि जिन प्राणियों के हृदय में प्रेममय भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित होती है, मेरी उन पर विशेष कृपादृष्टि होती है। अर्थात् उनपर मेरी विशेष अनुकम्पा होती है। हम सभी विज्ञान के एक सिद्धान्त को भली प्रकार जानते हैं-

Resonance

हमारे आदरणीय गुरुदेव जी महाराज ने विज्ञान के इस सिद्धान्त को ईश्वरीय कृपालुता से जोड़ स्पष्ट किया है। जैसे-

एक कम्पन होता है, और दूसरा अनुकम्पन।

किसी भी परिस्थिति में सर्वप्रथम कम्पन होता है तत्पश्चात् अनुकम्पन निर्मित होता है। श्रीभगवान यहाँ स्पष्टरूप से कहते हैं कि हे अर्जुन! सर्वप्रथम मेरे शुद्ध भक्तों में भक्ति रूपी कम्पन उत्पन्न होता है, जिसके पश्चात् उनके अन्त:करण में निवास करने वाला मैं अपनी अनुकम्पा से उनके हृदय में विद्यमान अन्धकार स्वरूप अज्ञान को नष्ट कर, ज्ञान रूपी दीपक प्रज्वलित कर अपने भक्त के अन्त:करण को प्रकाशित कर देता हूँ। श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं

होऊन मशालजी किरीटी त्याच्या पुढे चालतो।
त्या शुद्ध तत्त्वज्ञानां साठी, लावून कापडा ची दिवटी।।

ज्ञान रूपी मशाल लिए मैं उनके साथ-साथ चलता हूँ, ताकि उनके चहुँ ओर उपस्थित अन्धकार रूपी अज्ञान पूर्णत: समाप्त हो जाये एवम् उनका सम्पूर्ण जीवन प्रकाशमय हो। यह वैसे ही है जैसे तानपुरे के एक तार में कम्पन उत्पन्न किया जाये, तब उसके प्रभाववश अर्थात् कम्पन से वाद्य के अन्य तारों में भी अनुकम्पन्न प्रारम्भ हो जाता है तथा हम वाद्ययन्त्र की मधुर ध्वनि का श्रवण कर सकते हैं।

भक्तिरस की जैसे-जैसे वृद्धि होती है, ज्ञान का आलोक भी भक्ति के साथ निरन्तर प्रस्फुटित होता जाता है। श्रीभगवान के नित्य आनन्दित कर देने वाले स्वरूप से अर्जुन भी अभिभूत् हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण को विशेष रूप से जानते हैं। तथापि उन्होंने श्रीभगवान का महाभारत युद्ध में अपने सारथी के रूप में चयन किया है। श्रीभगवान की महिमा अर्जुन जानते हैं, परन्तु आंशिक रूप से अन्यथा महाभारत युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व जब वे श्रीकृष्ण से भेंट हेतु द्वारिका पहुँचे, उसी समय दुर्योधन भी वहाँ उपस्थित थे। श्रीकृष्ण ने दोनों को ही चयन का अवसर प्रदान किया, या तो वे सारथी रूप में निहत्थे श्रीभगवान का चयन करें या श्रीकृष्ण की नारायणी सेना का। अर्जुन प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण को अपने साथ चाहते थे। अत: उन्होंने श्रीभगवान का चयन किया, अपने सारथी रूप में। कदाचित हमारे भीतर भी श्रीहरि का वास है, जिसके कारण आज हमारे हाथ में श्रीगीता जी विद्यमान हैं! परन्तु उनकी महिमा, उनकी समग्रता से आज भी हम अनजान हैं। उनके सिद्धान्तों के विषय में हम नहीं जानते। अर्जुन के माध्यम से श्री भगवान स्वयम् का परिचय देना चाहते हैं!

श्रीभगवान कैसे हैं? वे समस्त जीवों को बताने हेतु इच्छुक हैं। अर्जुन को माध्यम बना श्रीभगवान के मुखारविन्द से गीता जी के रूप में ज्ञान की अविरल धारा बही, जिसका रसास्वादन आज भी हम समस्त प्राणियों द्वारा किया जा रहा है। अर्जुन अब कुछ-कुछ समझ गये हैं कि श्रीभगवान विशिष्ट ही नहीं अतिविशिष्ट हैं। चूँकि इस क्षण अर्जुन उन्हें अपना सारथी बने देख रहें हैं, जो अर्जुन के रथ में संलग्न श्वेत अश्वों की लगाम अपने करकमलों से थामे हुए हैं परन्तु अब अर्जुन इस ओर दृष्टिगत होते श्रीभगवान के स्वरूप को पूर्ण सत्य न मानते हुए, उनके विषय में सम्पूर्णता से समग्रता से जानने हेतु इच्छुक हैं एवम् इस क्षण अर्जुन की भाषा में अन्तर को हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

10.12, 10.13

अर्जुन उवाच
परं(म्) ब्रह्म परं(न्) धाम, पवित्रं(म्) परमं(म्) भवान्।
पुरुषं(म्) शाश्वतं(न्) दिव्यम्, आदिदेवमजं(म्) विभुम्॥10.12॥
आहुस्त्वामृषयः(स्) सर्वे, देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः(स्), स्वयं(ञ्) चैव ब्रवीषि मे॥10.13॥

अर्जुन बोले - परम ब्रह्म, परम धाम (और) महान् पवित्र आप ही हैं। (आप) शाश्वत, दिव्य पुरुष, आदिदेव, अजन्मा (और) सर्वव्यापक हैं -
(ऐसा) आपको सबके सब ऋषि, देवर्षि नारद, असित, देवल तथा व्यास कहते हैं और स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं।

विवेचन:- अर्जुन का अवबोध समाप्त हो चुका है। वे इसी क्षण यह समझ गये हैं कि श्रीभगवान उनके अन्तःकरण में विराजित होकर उनके हृदय में उपस्थित अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर ज्ञान का दीप प्रज्वलित करने हेतु प्रयासरत हैं। अर्जुन को यह आभास हो रहा है कि इस सृष्टि के रचनाकार अर्थात् निर्माण करने वाले, इस सृष्टि का सञ्चालन करने वाले, सम्पूर्ण सृष्टि के नियन्ता श्रीकृष्ण ही हैं। वे परम् ब्रह्म अनेक ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं।

" अनेक कोटि ब्रह्माण्ड नायक"

वे परमधाम हैं। परम पवित्र हैं। अनेक ऋषि-मुनि जैसे नारद, असित, देवल तथा व्यास आपके इस सत्य की पुष्टि करते हैं, उन्हें पूर्व में भी ऐसी उपमाएँ दे चुकें हैं तथा उनके यह उद्गार स्वयम् अर्जुन ने अपने कर्णों से श्रवण किए हैं।

आप सनातन पुरुष, आदि देव (देवों के देव), आप अजन्मा (जिसका कभी जन्म नहीं होता) तथा आप विभु हैं, सर्वव्यापी हैं। यह श्री भगवान स्वयं ही अर्जुन को बता रहे हैं।

अजन्मा अर्थात् जिनका जन्म न हुआ हो अत: रामनवमी एवम् श्रीकृष्ष जन्माष्टमी वे दिन हैं, जब परमात्मा का इस सृष्टि में अवतरण हुआ, उनका प्राकट्य हुआ। वे निर्गुण, निराकार भी हैं तथा सगुण साकार भी, यह अर्जुन का दृढ़ विश्वास है। अब तक तो अर्जुन श्रीकृष्ण को अपना प्रिय मित्र और सखा ही समझते रहे और उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी किया। ग्यारहवें अध्याय में श्रीभगवान के विश्वरूप दर्शन करने बाद अर्जुन को यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि वे जिन्हें अपना सखा मान रहे हैं वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण, हे यादव हे सखेति अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ।।
11.41

कभी- कभी हमारे समीप स्थित किसी व्यक्ति की महानता के विषय में हम अज्ञानी होते है परन्तु जब वह जीव या वस्तु हमसे दूर होती है, उस क्षण हमें उसकी महानता का बोध होता है। चूँकि श्रीभगवान अर्जुन के प्रिय सखा भी हैं, अत: वे उनके अत्यन्त समीप भी हैं, इस सामीप्य के कारण अर्जुन उनकी महानता एवम् परम विशेषता से परिचित नहीं हैं। हाँ, अब वे धीरे-धीरे भगवान को जान रहे हैं और ऐसा इसलिए सम्भव है, क्योंकि श्रीभगवान की उन पर कृपा है। जब तक परमात्मा की कृपा नहीं होती, उन्हें नहीं जान सकते।

ते जानै, देऊ जानै।

अर्जुन श्रीभगवान की महिमा से अभिभूत हो रहे हैं और वे उनके बारे में और जानना चाहते हैं।

10.14

सर्वमेतदृतं(म्) मन्ये, यन्मां(म्) वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं(म्), विदुर्देवा न दानवाः॥10.14॥

हे केशव ! मुझसे (आप) जो कुछ कह रहे हैं, यह सब (मैं) सत्य मानता हूँ। हे भगवन् ! आपके प्रकट होने को न तो देवता जानते हैं (और) न दानव ही जानते हैं।

विवेचन:- हे कृष्ण! आपने मुझसे जो कुछ कहा, मैं उसे सत्य मानता हूँ। श्रीभगवान की भक्ति के अमृत स्वरूप रस का पान करते हुए, अर्जुन पूर्णत: ईश्वरीय तेज में लीन होकर, यह वचन श्रीभगवान के सम्मुख प्रकट करते हैं कि हे प्रभु! आपका जो लीला स्वरूप है, उसे न तो दानव समझ पाते हैं, न देवता ही आपके स्वरूप की अनुभूति कर पाते हैं। भगवत् कृपा बिना कोई भी प्राणी आपको लेश मात्र भी अनुभूत करने का सामर्थ्य प्राप्त नहीं कर पाता। आप स्वयम् ही अपने आप को जानते हैं। परमात्मा को जानना है तो परमात्म-तत्त्व की अनुभूति होना आवश्यक है, जैसे माता को समझने के लिए मातृत्व।

आपके विषय में जो सम्पूर्ण ज्ञान है, वह केवल आप को पता है, अन्य किसी को नहीं! अत: मैं (अर्जुन) आपकी समग्रतापूर्वक अनुभूति प्राप्त करने हेतु इच्छुक हूँ! कृपया अपनी सम्पूर्णता का मुझे अनुभव प्रदान कीजिए। हे भगवान मैं आपको जानना चाहता हूँ।

अध्याय ग्यारह में जब अर्जुन को श्रीभगवान के दिव्य दर्शन प्रत्यक्ष रूप से होते हैं, तत्पश्चात् किसी संशय का उनके मन में कोई भी स्थान नहीं रह जाता। अब वे जानना चाहते हैं कि परमात्मा को सरलता से कहाँ और किस रूप में देखा जा सकता है।

10.15

स्वयमेवात्मनात्मानं(म्), वेत्थ त्वं(म्) पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश,देवदेव जगत्पते॥10.15॥

हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगत्पते ! हे पुरुषोत्तम ! आप स्वयं ही अपने-आपसे अपने-आपको जानते हैं।

विवेचन:- श्रीभगवान के वास्तविक स्वरूप को शनैः शनैः अनुभूत करते हुए, अपने यह वचन उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि आज मुझे सत्य की प्रतीति हुई है। मैंने आपके विषय में जो श्रवण किया वह सर्वथा सत्य है! परन्तु वह आंशिक अनुभूति है, इस क्षण मैं स्वयम् आपके मुखारविन्द से ही आपके विषय में जानने एवम् समझने का इच्छुक हूँ क्योंकि आप स्वयम् ही हैं, जो अपने आप को सम्पूर्णता से जानते हैं। अर्जुन यहाँ श्रीभगवान को पृथक- पृथक् उपमाओं से अलङ्कृत करते हुए सम्बोधित करते हैं।

हे भूतभावन!

सम्पूर्ण विश्व का निर्माण करने वाले। जिसमें मात्र जीव जगत ही सम्मिलित न होकर पर्वत, नदियाँ आदि भी श्रीभगवान द्वारा निर्मित हैं।

भूतेश!

समस्त प्राणियों के स्वामी (परम् नियन्ता), कण कण में व्याप्त, आत्मतत्त्व।

देवदेव!

समस्त देवताओं के उद्गम, समस्त देवों में पूजनीय।

जगत्पति!

प्रत्येक वस्तु के परम स्वामी।

अर्जुन यहाँ श्रीभगवान को उनके समग्र एवम् सम्पूर्ण व्यक्तित्व को परिभाषित करने हेतु प्रयासरत हैं। वे कहते हैं, आप ही स्वयम् अपने को जानते हैं। वेदों में, गुरुओं ने अपने पृथक्- पृथक् भाष्य में उल्लेखित किया है कि कदाचित् श्रीभगवान अपनी स्वयम् की महिमा से अवगत हैं भी या नहीं क्योंकि वे उस क्षण स्वयम् अपनी सम्पूर्णता को भुला बैठतें हैं, जब उन्हें उनका कोई भक्त उनमें रमता हुआ दृष्टिगोचर होता है, वे भी अपने उस भक्त में तल्लीन हो जाते हैं। अर्जुन श्रीभगवान जी को समग्रता से जानने के इच्छुक हैं, उनसे उनकी विभूतियों का वर्णन जानने हेतु तत्पर हैं।

10.16

वक्तुमर्हस्यशेषेण,दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकान्, इमांस्त्वं(म्) व्याप्य तिष्ठसि॥10.16॥

इसलिए जिन विभूतियों से आप इन सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं, (उन सभी) अपनी दिव्य विभूतियों का सम्पूर्णता से वर्णन करने में (आप ही) समर्थ हैं।

विवेचन:- अर्जुन श्रीभगवान जी से अपने उन समग्र (सम्पूर्ण) दैवीय ऐश्वर्यों को विस्तारपूर्वक वर्णित करने हेतु आग्रह करते हैं, जिनके द्वारा वे इन समस्त लोकों में व्याप्त हैं एवम् अपनी इन समस्त विभूतियों के विषय में मात्र आप ही वर्णित कर सकते हैं तथा निरन्तर अपना स्मरण हो जाये ऐसे स्थानों का भी आप वर्णन करें। अर्जुन श्रीकृष्ण से उनकी सर्वव्यापकता की व्याख्या करने हेतु अनुरोध करते हैं। यहाँ विभूति शब्द का विशेष अर्थ है

भूति अर्थात् भूत (भवति इति भूतः)

उसमें विशेष तत्त्व से प्रस्फुटित होने वाले अर्थात् चिन्तन के कारण उस परमात्मा से हमारा एकाकार होता है। ऐसे कुछ स्थान, कुछ जीव, कुछ नदियाँ, कुछ पर्वत उनका वर्णन आपके श्रीमुख से सुनने की इच्छा है, एवम् पूर्णता से सुनना चाहता हूँ। यहाँ विभूति का एक अन्य अर्थ गुरुदेव जी के मुख से उद्घाटित हुआ।

भूति अर्थात् समृद्धि

विभूति तात्पर्य विशेष समृद्धि एवम् ऐश्वर्य।

चूँकि कण-कण में ईश्वर विराजते हैं! तथापि हम देवालय क्यों जाते हैं? यह प्रश्न प्रायः सुनने में आता है। इसे आधुनिक समय में विद्यमान तकनीक द्वारा उचित प्रकार से समझा जा सकता है। यहाँ हम Internet के विषय में विचार करते हैं, जिसकी तरङ्गें सर्वत्र उपलब्ध हैं, फिर भी हमें उसके सञ्चालन हेतु Computer की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार ईश्वरीय तत्त्व के स्पन्दन की अनुभूति विशेष स्थानों जिन्हें हम मन्दिर कहते हैं अत: हमारे देवस्थानों का विशेष महत्व है।
अपना काम करते हुए श्रीभगवान जी को हमेशा कैसे देख सकते हैं?

10.17

कथं(म्) विद्यामहं(म्) योगिंस्, त्वां(म्) सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु,चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥10.17॥

हे योगिन् ! हरदम सांगोपांग चिन्तन करता हुआ मैं आपको कैसे जानूँ ? और हे भगवन् ! किन-किन भावों में (आप) मेरे द्वारा चिन्तन किये जा सकते हैं अर्थात् किन-किन भावों में मैं आपका चिन्तन करूँ?

विवेचन:- हे परम योगी! हम किस तरह आपका निरन्तर चिन्तन करें एवम् आपको कैसे जानें!

हे भगवान!

आपका किन- किन रूपों में दर्शन किया जाये!

इस सृष्टि के कार्य करने हेतु हम बाध्य हैं, तथापि निरन्तर आपका ध्यान, पूजन, अर्चन करने हेतु असमर्थ हैं। चूँकि अर्जुन यहाँ हमारा प्रतिनिधित्व कर रहें हैं। अत: जनसामान्य भी किस प्रकार भगवान का अनुसन्धान कर श्रीभगवान से सम्बद्ध रहें, इस हेतु उनकी विभूतियों को वर्णित करें। वह विद्या या वह भाव कौन से हैं, जो चिन्तन योग्य हैं! एवम् जिनका अन्त:करण में चिन्तन करके सामान्य जन भी ईश्वर से एकाकार करने में सक्षम हो सकता है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-
अहो मी कैसे तुम्हां जाणावे, काय जाणून सदा चिन्तावे।
सर्व तूं च हे म्हणावे, तरी चिन्तनच ना घड़े।।

अर्जुन चाहते हैं कि श्रीभगवान अपनी विभूतियों का विस्तृत वर्णन करें।

10.18

विस्तरेणात्मनो योगं(म्), विभूतिं(ञ्) च जनार्दन।
भूयः(ख्) कथय तृप्तिर्हि, शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥10.18॥

हे जनार्दन ! (आप) अपने योग (सामर्थ्य) को और विभूतियों को विस्तार से फिर कहिये; क्योंकि (आपके) अमृतमय वचन सुनते-सुनते मेरी तृप्ति नहीं हो रही है।

विवेचन:- हे जनार्दन! आप पुनः विस्तारपूर्वक अपने ऐश्वर्य तथा योगशक्ति का वर्णन करें। आपके विषय में श्रवण से मैं अभी तृप्त नहीं होता हूँ! क्योंकि आपके विषय में जितना श्रवण करता हूँ, मैं और भी अधिक आपके शब्द-=अमृत का रसास्वादन करना चाहता हूँ। चूँकि श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं का श्रवण मात्र ही जीव विशेष को, जिसने श्रीकृष्ण से अपना दिव्य सम्बन्ध स्थापित कर लिया है! प्रफुल्लित, आनन्दित कर देता है। श्रीगीता जी के अध्याय सात में श्रीभगवान अपनी कुछ विभूतियों को वर्णित करते हैं-

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥7.8।।

हे अर्जुन! मैं जल में रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदों में ॐ कार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ।
अर्जुन कहते हैं कि आपकी वाणी अमृत सदृश्य है, जिसे श्रवण करने से कदापि तृप्ति की अनुभूति नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है, मानो अपने मुखारविन्द से आपकी वाणी रूपी यह अमृत धारा सदैव प्रवाहित होती रहे! इसके श्रवण मात्र से मेरा रोम-रोम कम्पित हो आनन्दित होता रहे। अर्जुन के इस प्रकार के कथन सुन श्रीभगवान प्रसन्न होकर, अर्जुन को अपनी विभूतियों के विषय में वर्णित करना आरम्भ कर देते हैं।

10.19

श्रीभगवानुवाच
हन्त ते कथयिष्यामि, दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः(ख्) कुरुश्रेष्ठ, नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥10.19॥

श्रीभगवान् बोले -- हाँ, ठीक है। मैं अपनी दिव्य विभूतियों को तेरे लिये प्रधानता से (संक्षेप से) कहूँगा; क्योंकि हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरी

विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है।

विवेचन:- इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन को यह स्पष्ट कर देतें हैं, हे कुरुश्रेष्ठ! मेरा ऐश्वर्य असीम है! अत: अब मैं तुमसे अपने मुख्य-मुख्य वैभवयुक्त रूपों का वर्णन करूँगा।

श्रीभगवान की विभूतियाँ अनन्त हैं। इस विश्व का जितना विस्तार है, विभूतियाँ भी उतनी ही हैं और दिव्य हैं, सारी की सारी विभूतियों का वर्णन सम्भव नहीं है।

10.20

अहमात्मा गुडाकेश, सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं(ञ्) च, भूतानामन्त एव च॥10.20॥

हे नींद को जीतने वाले अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणियों के आदि, मध्य तथा अन्त में मैं ही हूँ और सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण (हृदय) में स्थित आत्मा भी मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान अपनी विभूतियों का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। हे अर्जुन! मैं समस्त जीवों के हृदय में स्थित परमात्मा हूँ। मैं ही समस्त जीवों का आदि, मध्य तथा अन्त भी हूँ।

यहाँ श्रीभगवान अर्जुन को गुडाकेश कह कर सम्बोधित करते हैं। गुडाकेश का अर्थ है: निद्रा को जीतनेवाला अर्थात् जो निद्रा का ईश है परन्तु इस युद्ध भूमि में अर्जुन ने मोहवश अज्ञान रूपी निद्रा के अधीन हो अज्ञान के वशीभूत होकर, अपने धनुष को भी त्यागने का मन बना लिया है। ऐसी स्थिति में श्रीभगवान अर्जुन को इस मोह रूपी अज्ञान की निद्रा का त्याग कर, इस युद्ध भूमि में उन्हें, उनके कर्तव्यों का बोध कराने हेतु प्रयासरत हैं। जिसके चलते वे विस्मृत हुए अर्जुन को उनके द्वारा किए गए धनुर्विद्या अभ्यास, जो वे रात्रि में करते थे। अत: उन्होंने अपनी निद्रा पर भी विजय प्राप्त की थी, उनकी स्मृति में लाने हेतु प्रयासरत हैं।

श्रीभगवान यहाँ वर्णित करते हुए कहते हैं कि मेरा आत्मतत्त्व समस्त भूतों में विद्यमान है। यहाँ वे न केवल जीवित प्राणियों के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित अपने आत्मतत्त्व को वर्णित कराते हैं, अपितु उनके द्वारा निर्मित समस्त निर्जीव वस्तुओं में भी वह आत्मतत्त्व की उपस्थिति के विषय में वर्णन करते हैं। भारतीय दर्शन में भी पृथ्वी जिन्हें भगवान विष्णु की पत्नी का रूप मान हम प्रातः उठ धरती पैरों से स्पर्श करने से पूर्व उन्हें नमन करते हैं!

समुद्र वसने देवी, पर्वतस्तन मण्डले
विष्णु पत्नी नमस्तुभ्यम्, पादस्पर्शं क्षमस्व में।।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जगदीश चन्द्र बोस ने भी वृक्षों में जीवन की पुष्टि की, जो भारतीय दर्शन प्रारम्भ से ही मान रहा है। जीव या निर्जीव, सभी में आत्मतत्त्व है।

जे जे भेटे, ते ते मानी भगवन्ताचा अंश।।

मराठी के प्रसिद्ध भक्त कवि सावता माळी जो सब्जियाँ बेचा करते थे, उन्हें उन सब्जियों में भी ईश्वर दिखते थे।

कान्दा मूळा भाजी, अवघी विठाई माझी।।

ठाकुर रामकृष्णदेव जी को अपने जीवन के अन्तिम समय में, गले का कैंसर था। वे भोजन ग्रहण करने में असमर्थ थे, तब उनसे यदि पूछा जाता कि आप तो यह भोजन ग्रहण नहीं कर पा रहें है, वे कहते कि मेरे समस्त शिष्य तथा भक्तगण जो भोजन ग्रहण कर रहें हैं, उन्हीं के मुख से वे भी भोजन ग्रहण कर, उस स्वादिष्ट भोजन का रसास्वादन कर रहे हैं। परमात्मा से उनका

एकीकरण ही उन्हें समस्त प्राणियों में उस परम तत्त्व के दर्शन करने हेतु दिव्यदृष्टि दे रहा था, जिसके पश्चात सन्तों को समस्त जीवों में परमात्मा के दर्शन होते हैं।

भारतीय समाज में आज भी एक प्रचलन है, जब हम किसी से मिलते हैं तब हम राम-राम कहते हैं अर्थात् मैं आपके अन्दर विद्यमान राम को प्रणाम करता हूँ।

10.21

आदित्यानामहं(म्) विष्णु:(र्), ज्योतिषां(म्) रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि, नक्षत्राणामहं(म्) शशी॥10.21॥

मैं अदिति के पुत्रों में विष्णु (वामन) (और) प्रकाशमान वस्तुओं में किरणों वाला सूर्य हूँ। मैं मरुतों का तेज (और) नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान इस श्लोक द्वारा उद्घाटित करते हैं, कि वे बारह आदित्यों में विष्णु हैं, प्रकाशों में सूर्य हैं! जो परमात्मा का हमारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप है। उनतालीस मरुतों में मरीचि तथा नक्षत्रों में चन्द्रमा हैं। रात्रि के समय वैसे तो आकाश में अनगिनत तारे एवम् नक्षत्र दिखाई देते हैं परन्तु शशि या चन्द्रमा ही उनकी विभूति है।

10.22

वेदानां(म्) सामवेदोऽस्मि, देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां(म्) मनश्चास्मि, भूतानामस्मि चेतना॥10.22॥

(मैं) वेदों में सामवेद हूँ, देवताओं में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और प्राणियों की चेतना हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान जी इस श्लोक के माध्यम से अपनी अन्य विभूतियों को उद्घाटित करते हुए कहते हैं- समस्त वेद सम्पूर्ण विश्व कल्याण की कड़ी हैं।

"वेदा: सर्व हितार्थाय।"

मैं वेदों में सामवेद हूँ, जो गीत रूप में गाया जाता है, एवम् परम आत्मीय अनुभूति प्रदान करता है। देवताओं में स्वर्ग का अधिपति अर्थात् राजा इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ। कहते है मन बेहद चञ्चल होता है।

यहाँ एक प्रसङ्ग की चर्चा महत्वपूर्ण हो जाती है- एक समय दो मित्र अपने गाँव से जगन्नाथ जी के दर्शनों हेतु निकले। यात्रा के मध्य उन्हें एक मैदान में क्रिकेट का खेल होते हुए दिखता है। एक मित्र तो खेल देखने का इच्छुक हो, वहीं मैदान में रूक जाता है। दूसरा मित्र अपनी यात्रा पूरी कर जगन्नाथ भगवान के दर्शन हेतु मन्दिर पहुँच जाता है। मैदान में बैठे मित्र का मन मन्दिर में दर्शन करते अपने मित्र एवं भगवान जगन्नाथ के विषय में सोचता हुआ, उन पर केन्द्रित हो जाता है। दूसरा मित्र मन्दिर में भगवान जी के समक्ष खड़ा हो मैदान में हो रहे खेल के विषय में सोचता है।

जिसका मन जहाँ लग जाये वह वहाँ स्वतः ही पहुँच जाता है। मन भगवान की विभूति है, मन यदि भगवान के चिन्तन में लग जाये तो जीव को मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है इस लिये कहा गया है-

मन: एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

समस्त जीवों में उनकी चेतना शक्ति अर्थात् आत्मा हूँ। जीव की मृत्यु के पश्चात् हम कहते है कि इसमें अब राम नहीं हैं अर्थात

उसमें चैतन्य नहीं रहा।

10.23

रुद्राणां(म्) शङ्करश्चास्मि,वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां(म्) पावकश्चास्मि, मेरुः(श्) शिखरिणामहम्॥10.23॥

रुद्रों में शंकर और यक्ष-राक्षसों में कुबेर मैं हूँ। वसुओं में पवित्र करने वाली अग्नि और शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान जी कहते हैं- मैं समस्त (ग्यारह) रुद्रों में शिव हूँ! यक्षों एवम् राक्षसों में सम्पत्ति का देवता (कुबेर) हूँ! वसुओं में अग्नि तत्व हूँ, यज्ञ में अग्नि को आहुति दी जाती है जो परमात्मा को प्राप्त होती है। मैं समस्त पर्वतों में मेरु हूँ। मेरु पर्वत अपनी प्राकृतिक विविधता के कारण तथा यह पृथ्वी का केन्द्र बिन्दु के कारण श्रेष्ठ है।

10.24

पुरोधसां(ञ्) च मुख्यं(म्) मां(म्), विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं(म्) स्कन्दः(स्),सरसामस्मि सागरः॥10.24॥

हे पार्थ ! पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति को मेरा स्वरूप समझो। सेनापतियों में कार्तिकेय और जलाशयों में समुद्र मैं हूँ।

विवेचन:- श्री भगवान अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं-मुझे समस्त पुरोहितों में मुख्य पुरोहित बृहस्पति जानो। बृहस्पति राजा इन्द्र के पुरोहित हैं, जिन्होंने शिवजी व पार्वती माता का विवाह कराया था। मैं ही समस्त सेनानायकों में कार्तिकेय हूँ। कार्तिकेय श्रीभगवान की विभूति रूप तो हैं! परन्तु आज के सन्दर्भ में यदि विचार किया जाये तो हमारे राष्ट्र के रक्षक हमारे सेनानायक, जिनमें वीरत्व विद्यमान है एवम् जो वीरतापूर्वक भारत राष्ट्र की सीमाओं पर दृढ़ता के साथ खड़े होकर, राष्ट्र की रक्षा हेतु अपने प्राण न्योछावर करने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं, ऐसे वीरों में भी परमतत्त्व विद्यमान है। सदैव उन्हें नमन करना हमारा कर्तव्य बन जाता है। समस्त जलाशयों में मैं समुद्र हूँ। समुद्र में उसकी विशालता का अनुभव, उसकी गहराई का अनुभव ही उसमें परमतत्त्व के दर्शन कराता है।

10.25

महर्षीणां(म्) भृगुरहं(ङ्),गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां(ञ्) जपयज्ञोऽस्मि, स्थावराणां(म्) हिमालयः॥10.25॥

महर्षियों में भृगु और वाणियों (शब्दों) में एक अक्षर अर्थात् प्रणव मैं हूँ। सम्पूर्ण यज्ञों में जप यज्ञ (और) स्थिर रहने वालों में हिमालय मैं हूँ।

विवेचन:- मैं महर्षियों में भृगु हूँ। महर्षि भृगु ने सम्पूर्ण विश्व को कालातीत में जा कर देखा अर्थात् उन्होंने वर्तमान समय में उपस्थित होते हुए भविष्य एवम् भूत काल को भी देखा।

अक्षरों में ॐ कार हूँ। ध्यान की मुद्रा में बैठे हुए ॐ का दीर्घ उच्चारण भगवान का स्पर्श अनुभव कराता है। सारे यज्ञों में जप यज्ञ हूँ, जो खण्डित हुए बिना, किसी रुकावट बिना निरन्तर चलता रह सकता है।

विवेकानन्द जी ने अपने देहावसान तक अपनी जप माला नहीं त्यागी। वे निरन्तर प्रभु नाम जप करते रहे। निरन्तर प्रभु नाम जप मन में ईश्वर का चिन्तन उत्पन्न करता है, जो अन्ततः ईश्वर से एकीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। पर्वतों में मैं हिमालय हूँ, जिसकी दिव्यता की अनुभूति हिमालय पर जाकर ही की जा सकती है।

10.26

अश्वत्थः(स्) सर्ववृक्षाणां(न्),देवर्षीणां(ञ्) च नारदः।
गन्धर्वाणां(ञ्) चित्ररथः(स्), सिद्धानां(ङ्) कपिलो मुनिः॥10.26॥

सम्पूर्ण वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि (मैं हूँ)।

विवेचन:- समस्त वृक्षों में मैं अश्वत्थ वृक्ष हूँ। यह सर्वदा परिवर्तनशील है, अर्थात् नित्य नवीनता की प्रतीति कराता है, जिसका वर्णन श्रीभगवान अध्याय पन्द्रह में भी कर चुकें हैं।

श्री भगवानुवाच
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।
15.1

देवर्षियों में मैं नारद हूँ, वह मेरी ही विभूति हैं। समस्त गन्धर्वों (देवताओं का मनोविनोद करने वाले) में चित्ररथ हूँ। वर्तमान समय में स्वर माधुर्य से परिपूर्ण कलाकार जैसे लता मङ्गेशकर में वह परम तत्व की उपस्थिति अनुभूत होती है। मुनियों में कपिल मुनि जो साङ्ख्य तत्त्व के प्रवर्तक हैं, मेरी ही विभूति हैं।

10.27

उच्चैःश्रवसमश्वानां(म्),विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं(ङ्) गजेन्द्राणां(न्), नराणां(ञ्) च नराधिपम्॥10.27॥

घोड़ों में अमृत के साथ समुद्र से प्रकट होने वाले उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी को और मनुष्यों में राजा को मेरी विभूति मानो।

विवेचन:- अश्वों में उच्चैश्रवा हूँ। आधुनिक समय में चूँकि उच्चैश्रवा (समुद्र मन्थन में अनेक रत्नों आदि पदार्थों सहित उत्पन्न हुआ घोड़ा) दृष्टिगत नहीं है। महाराणा प्रताप का अश्व **चेतक**, जिसने स्वामी भक्ति में अपने प्राणों की आहुति दे दी, उसमें ही परम तत्त्व विद्यमान मानते हुए, चेतक को नमन करना चाहिए। हाथियों में ऐरावत हूँ, स्वर्ग के अधिपति इन्द्र का वाहन, इसकी उत्पत्ति भी समुद्र मन्थन से ही हुई थी। यह भी वर्तमान में दृष्टिगोचर नहीं है। मन्दिरों में आरती करते, घण्टी बजाते हाथी को ही ईश्वरीय तत्पूत्व से परिपूर्ण मानिये। मनुष्यों में राजा हूँ अर्थात् राष्ट्र का वह शासक जो राष्ट्रभक्ति को प्राथमिकता देते हुए धर्मपरायण हो शासन करे उसमें ही परम दिव्य तत्त्व अनुभूत करें।

जब जीव अच्छाई में अच्छाई का अनुभव करने लगे तब स्वतः ही वह अन्य जीवों में विद्यमान उस परमानन्द प्रदान करने वाले परम दिव्य तत्त्व के दर्शन करने लगता है तथा उस परम तत्त्व के प्रति स्वयम् ही नतमस्तक हो जाता है। यही इस अध्याय का सार है।

दिव्यत्वा ची जेथ प्रतीति, तेथे कर माझें जुळे।।

इसके साथ आज का ज्ञानमय सत्र समाप्त हुआ तथा प्रश्नोत्तर हुए।

विचार-मन्थन

प्रश्नकर्ता:- गीता दीदी
प्रश्न :- सृष्टि के कण-कण में ईश्वर है, ऐसा कहा जाता है। प्रकृति की हर वस्तु में परम तत्त्व विद्यमान होने के कारण जो रस है, आनन्द है परन्तु उस रस को ग्रहण करने से या सृष्टि में विद्यमान पदार्थों से विरक्त हो ईश्वर से एकीकरण की विषय में क्यों कहा जाता है?
उत्तर :- परमात्मा का निरन्तर चिन्तन परम तत्त्व के साथ एकीकरण करने हेतु अत्यधिक आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण है। इसे एक उदाहरण से उचित प्रकार से समझा जा सकता है। गन्ने की मधुरता में वही परम तत्त्व विद्यमान है, परन्तु यहाँ गन्ने के रस को,

उस मधुरता को अनुभव करने हेतु निरन्तर पीते रहो, ऐसा नहीं कहा गया है। खेतों में लहलहाते गन्ने के पौधे देखना, उसके माधुर्य में ईश्वरीय तत्त्व का अनुभव करना ही महत्वपूर्ण है।

यहाँ कल का ही प्रसङ्ग ले लेते हैं, भारत T20 Cricket World Cup का विजेता बना। प्रारम्भ में भारत की स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी, परन्तु एक खिलाड़ी द्वारा लिए गए catch ने match की दिशा परिवर्तित कर दी। जो कुछ भी अच्छा हुआ, उस खिलाड़ी में भी हमें परम तत्त्व को अनुभव करना चाहिए। मन को नियन्त्रण में रखकर उसे परमात्मा का मालिक बनाएँ, मन परमात्मा को प्राप्त करने का साधन है।

प्रश्नकर्ता:- वीरेन्द्र भैया
प्रश्न :- बचपन से ही वृन्दावन जाने का अवसर प्राप्त होता रहा है। वहाँ स्वामी हरिदास जी को अपना गुरु माना, तत्पश्चात् अनेक विभूतियों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्नीस वर्ष पूर्व गुरु गोविन्ददेव जी से दीक्षा ग्रहण की एवम् ज्ञानेश्वरी मन्त्र ग्रहण किया। अब दुविधा में हूँ कि गुरु के प्रति निष्ठा कैसे रखी जाये?
उत्तर :- गुरु एक तत्त्व हैं। वह ज्ञान हैं एवम् ज्ञान जहाँ से प्राप्त हो या जिससे प्राप्त हो, वही गुरु है। स्वयम् दत्त भगवान के तेईस गुरु थे। गुरु एक ही है, परब्रह्म परमेश्वर, उनका परम तत्त्व जिन विभूतियों में विद्यमान हैं एवम् जो हमे अज्ञान रूपी अन्धकार से निकाल हमारे अन्त:करण में ज्ञान रूपी प्रकाश को प्रस्फुटित करने हेतु प्रयासरत हैं वे गुरु हैं। पृथक-पृथक् देवी- देवताओं का कभी भी तो हम पूजन करते हैं। गुरु के लिये कहा गया है-

"गुरुः साक्षात् परब्रह्म"

प्रश्नकर्ता : श्री श्रीधर अन्धारे जी
प्रश्न : ऋषि और मुनि में क्या अन्तर है?
उत्तर : जो लोक कल्याण के लिए निरन्तर चिन्तन करते हैं और कल्याणकारी खोज कर साधनों को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं ऋषि कहलाते हैं। हम वैज्ञानिकों को ऋषि कह सकते हैं। मनन कर परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करें उसे मुनि कहते हैं।

।। कृष्णार्पणमस्तु ।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||